

मीरा के काव्य में स्त्री स्वर

डॉ. संगीता रानी

भारती कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भगवद भक्ति के रूप में उभरा भक्ति आंदोलन और इससे जुड़ा रचनात्मक अवदान सिर्फ आध्यात्म तक सीमित नहीं रहा। इसने जीवन के विविध पक्षों को केंद्रित किया, इसलिए भक्ति आंदोलन को एक अखिल भारतीय सांस्कृतिक आंदोलन भी कहा जाता है। इसने सामंती सोच और आचरण को भरसक चुनौती देने का प्रयास किया। जिससे साहित्य का ढांचा बदल गया, काफी हद तक पारंपरिक ढांचा टूट गया। इसका असर सामाजिक ढाँचे पर भी अवश्य पड़ा, जो टूटा तो नहीं लेकिन नरम अवश्य हुआ।¹ उसमें बहुत सारे परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त हुआ। उस पर विचार, चर्चा और प्रतिरोध का रास्ता तैयार अवश्य हो गया। भक्ति आंदोलन की इसी प्रवृत्ति के आधार पर डॉ रामविलास शर्मा ने इस आंदोलन का संबंध लोकजागरण से जोड़ा है।² भक्त कवियों ने जाति-पांति, ऊँच-नीच, सामाजिक, धार्मिक आडंबरों, कर्मकांडों और रूढ़ियों के विरुद्ध खुलकर मोर्चा लिया और भेदभावपूर्ण और नारकीय जीवन जीने को विवश जन समाज को अपना खुला समर्थन दिया। इससे कट्टरता, अंधविश्वास और शास्त्रीयता के विरुद्ध आपसी भाईचारे, प्रेम, अनुभव और कर्म को प्रमुखता मिली, जिससे वंचितों, निराश्रितों में भी आत्मसम्मान का भाव पैदा हुआ। भक्त कवियों में समाज के सभी वर्गों और पेशों से जुड़े लोग शामिल थे। इन सभी लोगों के अनुभवों से समृद्ध होकर भक्ति काव्य का दायरा काफी व्यापक हो गया।

भक्ति काव्य की पूरी परंपरा में सामाजिक विषमता की अनुभूति एक प्रमुख विषय है। सामाजिक विषमता की अनुभूति के बिना भक्ति कविता नहीं बनती।³ इसी अनुभूति के कारण सभी भक्त कवि सामंती सोच और आचरण पर प्रहार करते हैं और भेदभाव के सबसे प्रबल रूप जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष भी करते हैं। सामंती सत्ता और व्यवहार के प्रति तीखे प्रतिरोध के बावजूद स्त्रियों के प्रति भक्त कवियों का नजरिया अपने समकालीन समाज से बहुत अलग न था।

स्त्री यहाँ या तो पूजन की मूर्ति थी या फिर माया के रूप में पाप की खान। दरअसल स्त्रियों के संदर्भ में भक्त कवियों की दृष्टि, उनके चिंतन और आचरण के फर्क को जाहिर करती है। सामंती सोच और व्यवस्था के प्रबल विरोधी कबीर के यहाँ तो यह फर्क और अधिक मुखर दिखता है। कबीर के चिंतन की इसी फाँक के संदर्भ में प्रोफेसर पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं- “स्त्री के प्रति आकर्षण को साधक की सबसे बड़ी समस्या मानना, स्त्री के प्रति आकर्षण से साधक को विरत करने के लिए स्त्री मात्र को भयावह और तिरस्करणीय छवि देना, उसकी छाया मात्र से भुजंग के अंधे हो जाने का बखान करना — और दूसरी ओर साधना के गहनतम धरातल पर नारी की बानी बोलने लगना, प्रेम के समूचे प्रसंग को नारी की नजर से देखने लगना, मिलन की आतुरता और विरह की व्यथा को स्त्री की तरह महसूसना — कबीर की काव्य संवेदना की यह फाँक गौरतलब है।”⁴ दरअसल मध्यकाल की मानवीय और अमनोवैज्ञानिक नैतिकता ने मनुष्य के स्वाभाविक मनोवेगों पर बंदिशें लगाई और उन्हें हीन साबित करने की कोशिश की। साथ ही स्त्री और पुरुष के संदर्भ में इन नैतिकताओं की परिभाषाएँ बदली ही नहीं, विपरीत बना दी गईं। पुरुष के संदर्भ में जो स्वच्छंदता मर्दानगी और पुरुषार्थ कहलाया, वही कसौटी स्त्रियों के मामले में उन्हें कुलटा और व्यभिचारिणी से लेकर कुलनाशी आदि की श्रेणी में पहुँचा देती है।⁵ पुरुष भक्त कवि भी कहीं न कहीं इस सोच से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए। जाहिर है स्त्री पराधीनता और स्त्री जीवन के संघर्षों और कठिनाइयों को भक्त पुरुष कवियों के काव्य में वह स्थान न मिल सका जिसकी अपेक्षा थी। यह कमी पूरी हुई स्त्री भक्त कवयित्रियों के लेखन द्वारा। स्त्री भक्त कवयित्रियों के लेखन में भक्ति के साथ ही स्त्री जीवन के संघर्षों, कठिनाइयों और आकांक्षाओं को स्वर मिला। भक्ति आंदोलन में बड़ी संख्या में स्त्रियों ने भी खुल कर अपने विचार रखे। कश्मीर की ललदा, तमिलनाडु की आंडाल, कर्नाटक की अक्क महादेवी, महाराष्ट्र में मुक्ताबाई और हिन्दी में मीराबाई इत्यादि इसकी मिसाल हैं।

मीरा का काव्य भक्ति आंदोलन की एक प्रमुख उपलब्धि है। मीरा एक भक्त हैं, साथ ही वे एक स्त्री भी हैं। वह एक उच्च कुलोत्पन्न राजपरिवार की पुत्री और पुत्रवधू भी हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही मीरा के काव्य को पढ़ा जाना चाहिए। मीरा की कविता में भक्ति का स्वर प्रमुख होने के बावजूद अन्य पुरुष भक्त कवियों से इतर स्त्री जीवनानुभवों, संघर्षों और कामनाओं की सशक्त आवाज है। उनकी कविता “नारी के अन्तर्मन की घुटन और तड़प का प्रतिनिधित्व करती है, हमारी परंपरा और वेद तथा धर्मशास्त्र-विहित हमारे विधि-विधानों के चलते, जो सदियों से नारी के अन्तर्मन में उमड़ती-धुमड़ती रही है, और जिसे ढोना नारी की नियति बन गया है, या मान लिया गया है।... मीरा ने एक प्रकार से संपूर्ण नारी जाति के अब तक के अनभिव्यक्त और अनकहे को कहा है, प्रत्यक्ष भी और परोक्षतः भी।”⁶

मीरा के काव्य के रूप में जो भाव, जो मनोवृत्तियाँ व्यक्त हुई हैं वे एक स्त्री द्वारा, स्त्री के बारे में, स्त्री के नजरिए से लिखी हुई जीवनानुभूतियाँ हैं, उसकी कामनाएँ हैं। मीरा का काव्य, काव्य मात्र नहीं, उनका अनुभूत सत्य है, मध्यकाल की कड़वी हकीकत है और उसके प्रति मीरा का तीखा प्रतिकार है। मीरा इस हकीकत की भोक्ता बनी, रजवाड़े की हकीकत को देखा, महसूस इसीलिए उसके प्रति इतनी तलखी भी उनकी कविता में दृष्टव्य है। रचनाकार मीरा की कविता में राजघराने की मीरा का दुख, स्त्री जाति का दुख, उसकी पराधीनता, समाज की उसके प्रति अमानवीय दृष्टि, उसके विरुद्ध संघर्ष, भक्ति और मुक्ति की आकांक्षा यह सब शामिल है। रचनाकार मीरा अपने दुख, यातना, संघर्ष और मुक्ति के स्वप्न को स्त्री जाति से व्यापक पैमाने पर महसूस करती हैं, इसीलिए वह सबको अपनी आवाज से जोड़ लेती हैं। उनकी कविता यातना और उत्पीड़न के विरुद्ध स्वाधीनता और मुक्ति की आकांक्षा की कविता बन जाती है।

मीरा उस समाज में पैदा हुई जो रूढ़िवादी, पितृसत्तात्मक एवं कठोर सामंती समाजिक संरचना से परिपूर्ण था। जिसमें धर्म, लोक, कुल, मर्यादा और कर्तव्य के नाम पर स्त्री की आशाओं, आकांक्षाओं का दमन कर दिया जाता था। स्त्री के वजूद को नकार कर उसे पराधीन बनाए रखने का चक्रव्यूह रचा जाता था। मीरा पूरे साहस के साथ इस व्यवस्था के खिलाफ बगावत करती है, उसकी रीति नीति से डटकर टक्कर लेती है, संघर्ष करती है, उसे धिक्कारती है

और चुनौती देते हुए अपना स्वतंत्र, निज व्यक्तित्व गढ़ती है। मीरा के चरित्र और काव्य में उनकी ‘निजता’ सर्वाधिक मुखर है, यह उनके लिए सर्वोपरि है।⁷ उनका प्रेम, आत्मनिर्णय इसी अर्थ में महत्वपूर्ण है। समाज प्रदत्त पारिवारिक बंधनों की सीमाएं उन्हें स्वीकार नहीं। यहां मीरा एक स्वायत्त, बिंदास, आधुनिक स्त्री सरीखी दिखाई पड़ती हैं, जो अपने वजूद में विश्वास रखती है और किसी भी तरह की पाबंदी, बंधन को वह अस्वीकार करती है। इस दृष्टि से मीरा की कविता में स्त्री चेतना का सशक्त रूप स्वर दिखाई पड़ता है।

मीरा जिस मध्यकालीन समाज में अवतरित हुई, वह एक पितृसत्तात्मक समाज था। यहाँ सारे नियमों को बनाने और उन्हें तोड़ने का अधिकार पुरुषों को प्राप्त था। ऐसा समाज जहाँ लोकलाज और पदे या घूँघट का चलन वर्तमान में भी विद्यमान है, जहाँ पुरुष के साथ अपने संबंधों की प्रामाणिकता में सती हो जाने और जौहर तक की अमानवीय प्रथा मौजूद रही हो, वहाँ मीरा द्वारा भक्ति करने तक तो ठीक था, परंतु इस भक्ति के लिए सामंती बंधनों को चुनौती देना, लोकलाज त्यागना, इस पर समस्या होनी ही थी। पुरुष वर्चस्ववादी मध्यकालीन समाज में एक स्त्री द्वारा सभी तरह के सामाजिक बंधनों को चुनौती देना और उन्हें घोषित तौर पर तोड़ना, तत्कालीन समाज के लिए बिल्कुल असहनीय था, इसलिए इसके विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया भी होनी ही थी। लेकिन मीरा का नैतिक बल और साहस इतना प्रबल है कि उन्हें इसकी परवाह नहीं। कोई उन्हें भला-बुरा कहे, कोई उनकी निन्दा करे, इससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। यहाँ तक कि सगे-संबंधियों और परिजनों के उलाहने की भी उन्हें कोई चिंता नहीं। सास-ननद उनसे लड़ती हैं, उन्हें जली-कटी बातें सुनाती हैं, उन्हें ताले में बंद कर उनपर पहरा बिठा दिया गया है, उनके आवागमन पर रोक भी लगा दी गयी है-

हेरी म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाय।

सास लड़े मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या रिसाय।

पहरे भी राख्यो चैकी बिठायो, तालो दियो जड़ाय।

पितृसत्तात्मक सत्ता की जड़ें गहरे स्तर तक उसके आचरण और विचारों में निहित होती है जिसका पालन सिर्फ पुरुष ही नहीं, बहुत सारी स्त्रियाँ भी स्वभावतः करती रहती हैं। ऐसा आज के अधुनातन समय में भी विभिन्न मसलों पर देखा जा सकता है। मध्यकालीन समाज में स्त्रियों के संबंध में समाज में फैली कुरीतियों को महिलाओं का भी समर्थन प्राप्त रहा

और उसे लागू करने-कराने की भूमिका में भी रहीं। मीरा ने अपने पदों में कई बार सास-ननद द्वारा स्वयं को सताए जाने का जिक्र किया जाना, इसी का उदाहरण कहा जा सकता है। पितृसत्ता का यह प्रख्यात कथन कि 'स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है', मीरा के पदों में कई स्थानों पर सजीव होता दिखता है।

परिजन ही क्या अन्य लोग भी मीरा को कड़वे बोल बोलते हैं। उनकी हंसी उड़ाते हैं-

“कड़वा बोल लोग जग बोल्या, करस्यां म्हारी हांसी।”

या

“आंवां की डालि कोइल इक बोले, मेरो मरण अरु जग केरी हांसी।”⁸

मीरा के लिए अपने आराध्य और आराधना के बीच सत्ता, समाज और उसकी सड़ी-गली, रूढ़ परंपराओं का कोई स्थान नहीं है। इन सब को चुनौती देता उनका बगावती तेवर और साहस, उनकी कविता में अद्भुत शैली में प्रकट हुआ है। जिस मध्यकालीन समाज में स्त्री को खुलकर अपने विचार तक अभिव्यक्त करने की आजादी नहीं है, वहां स्त्री के लिए प्रेम की बात करना तो संभव ही नहीं। ऐसे में मीरा अद्भुत साहस के साथ बिना किसी लाग-लपेट के अपने प्रेम की घोषणा ताल ठोंक कर करती हैं-

“म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरा णां कूयां।

दूसरां णां कूयां साधां सकल लोक जूयां।

भाया छांड्यां, बन्धा छांड्यां छांड्यां संग्ता सूयां।

साधां संग बैठ बैठ लोक लाज खूया।

भगत देख्यां राजी ह्यां जगत देख्यां रूयां।

असवां जल सींच सींच प्रेम बेल बूयां।

राणा विषरो प्याला भेज्यां पीय मगन ह्यां।

अब तो बात फैल पड्या जाणं सब कूयां।

मीरां री लगन लग्यां होना होजू हूया।”⁹

भले ही ऊपरी तौर पर मीरा का काव्य व्यक्तिगत और अध्यात्मिक लगे किंतु उसमें सदियों से सामंती और अमानवीय सामाजिक व्यवस्था की कुरीतियों की शिकार पराधीन, शोषित, अपमानित और पीड़ित नारी की व्यथा, रोष और विद्रोह के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। मीरा का विद्रोह प्रथमतः सामंती व्यवस्था के गढ़ राजपरिवार से है, जो उन पर लगातार बंदिशें लगाने और उनकी आवाज दबाने से नहीं चूकना चाहता। जो उनकी उन्मुक्त प्रेमा भक्ति में सबसे बड़ी

बाधा लगातार उत्पन्न करता रहा है। उनका विरोध उस लोक व्यवस्था से भी है जो सामंती आचरण में रच-बस कर स्त्री की स्वतंत्रता और उसके प्रेम की अभिव्यक्ति के अधिकार को किसी भी कीमत पर स्वीकारना नहीं चाहता। सामंती व्यवस्था स्त्री को प्रतिष्ठा का प्रतीक बनाकर, उसका निजीकरण कर देती है। एक बंद दुनिया उसके लिए होती है घूँघट के भीतर और इस पर्दे की आड़ में उसे बाहर की विराट दुनिया से वंचित कर दिया जाता है। मीरा इस पर्दे को त्याग कर अपने लिए उस विराट दुनिया को सुलभ कर लेती हैं।¹⁰ व्यवस्था को मीरा का यह आचरण पसंद नहीं, वह उन्हें तरह तरह से प्रताड़ित करती है लेकिन मीरा उस पूरी व्यवस्था के सिरमौर को चुनौती देते हुए कहती हैं-

“राणाजी म्हाने या बदनामी लगे मीठी।

कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूंगी चाल अनूठी।”¹¹

स्त्री की परंपरागत छवि को तोड़ते हुए मीरा परंपरा, झूठी मान-मर्यादा और रीति- नीति के नाम पर अपनी स्वायत्तता का हनन किसी कीमत पर स्वीकार नहीं करती। लोक-लाज के ठेकेदार, विरोधी जनों को अपने घर पर बैठने और पर्दा करने की नसीहत देती हैं, तो दुर्जन जनों के लिए अंगीठी में जल जाने की कामना करती हैं-

“लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।

अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।।”¹²

सत संगति मा ग्यान सुणै छी, दुरजन लोगां ने दीठी।

मीरां रो प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अंगीठी।।”¹³

गहरे मानवीय सरोकारों से निर्मित मीरा का नैतिक बोध, पाप और पुण्य की नई परिभाषाएं गढ़ता है। गिरधर नागर के प्रेम में अनुरक्त मीरा के मन में अपने इष्ट के प्रति अगाध प्रेम, भक्ति, स्वतंत्र चिंतन, जीवन और साधु संगति को लेकर कोई मलाल या दुविधा नहीं है। स्त्री जीवन पर वर्चस्व बनाए रखने वाले व्यवस्था के ठेकेदार भले ही मीरा के प्रेम, साधु संगति और रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह को पाप की श्रेणी में रखें, मीरा इसे अस्वीकार करती है क्योंकि उसकी दृष्टि में पाप तो चोरी करना है, किसी जीव को सताना है-

कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हें तो गुण गोविन्द का गास्या,

जिण मारग म्हांरा साध पधारै, उस मारग म्हे जास्या,

चोरी न करस्यां जिव न सतास्या, कांई करसी म्हांरो कोई,

गज से उतर के खर नहीं चढस्या, ये तो बात न होई।”¹⁴

"मध्यकाल का पुरुष कवि भक्त होने के लिए जाति-पांति, धन, धरम, बड़ाई छोड़ता था तो इस स्त्री को 'लोक-लाज, कुल- श्रृंखला' तोड़ने पड़ती थी। यह श्रृंखला मीरा के कविता में बहुत महत्वपूर्ण है।"¹⁵ मीरा का घोषित रूप से कृष्ण को अपना कहना, और दूसरा कोई भी नहीं, इसे उस दौर में राजकुल की मर्यादा और लोकमर्यादा दोनों ही दृष्टियों से अनुचित माना गया। इसे राजकुल की प्रतिष्ठा और मर्यादा के खिलाफ माना गया। ऊपर से कृष्ण की पूजा अर्चना के लिए गायन और नर्तन, तथा साधू संगति, यह सब सामंती व्यवस्था के लिए असह्य थी। इसलिए राजभवन द्वारा उन्हें समझाने-बुझाने से लेकर डांटने-डपटने और हत्या तक के प्रयास हुए। कृष्ण के प्रेम में दीवानी होकर, साज-धज कर नृत्य करना, किसी भी इज्जतदार परिवार खासकर राजपरिवार के लिए बर्दाश्त से बाहर की बात की। इसीलिए उन्हें कुलनाशी भी कहा गया। लेकिन मीरा ने तो 'संतन को कहा सीकरी सो काम', कुंभन दास की इस उक्ति को भी बखूबी चरितार्थ किया। राजभवन के सुखसाज, तौर-तरीके और मर्यादा उन्हें बांध न सके। ऐसे बंधनों को पूरी ठसक के साथ तोड़कर वे निकल गईं।

मीरा ने 'पग बांध घूंघर्या पाच्यांरी' कहकर कृष्ण की भक्ति में नाचने का उद्घोष कर दिया। यह नाचने की आज्ञादी मध्यकालीन समाज में प्रभु वर्ग की स्त्रियों को न थी, इसके लिए लोग और पेशे निर्धारित थे, इसलिए ऐसा करना मीरा की ओर से राजभवन की मर्यादा ही नहीं, लोकलाज और लोकमर्यादा की भी घोषित अवमानना थी। मीरा अगर निम्न वर्ग में जन्मी होती तो उनके बाहर निकलने पर रूढ़िग्रस्त समाज इतना कुपित और क्षुब्ध ना होता।¹⁶ राजकुल में जन्मी मीरा के लिए बंधन और भी कठोर थे। अंततः उन्होंने राजभवन त्याग दिया या उन्हें त्यागने को विवश होना पड़ा। महात्मा बुद्ध एवं महावीर स्वामी ने भी गृह त्याग किया था, लेकिन वे पुरुष थे, और वे घर छोड़कर किन्हीं दार्शनिक प्रश्नों की खोज करना चाहते थे, इसलिए वे महान कहलाए और उनका कर्म त्याग। लेकिन यह गृह त्याग एक मध्यकालीन स्त्री मीरा को महान नहीं बना सकता था क्योंकि एक तो वे स्त्री थीं दूसरे वे किसी दार्शनिक प्रश्न की तलाश में न थीं, बल्कि वे स्वयं द्वारा चयनित मार्ग पर चलकर भक्ति में ही क्यों न सही जीवन को पूर्णतः जीना चाहती थीं। पुरुष के नाम के बिना सती या जौहर का विकल्प मुहैया कराने वाले

समाज को यह क्यूंकर गंवारा हो सकता था? देखा जाय तो समस्या भक्ति करने से अधिक न थी। अगर वे राजमहल में रहकर भक्ति करतीं, तो उनके स्वजनों को क्यों ऐतराज होता। परन्तु वे तो अपने चयनित मार्ग पर चलना चाहती थीं, स्त्री पराधीनता को चुनौती देना चाहती थीं, सत्ता के आदेशों और कुचालों का जवाब देने को तत्पर थीं, जो सामंती व्यवस्था के लिए नाकाबिले बर्दाश्त था। तत्कालीन समय में स्त्री न तो संन्यास लेने और न ही तीर्थाटन करने के लिए स्वतंत्र थी, ऐसे में जब पहली बार मीरा ने इस रूढ़ि पर प्रहार किया तो उनका तीखा प्रतिकार भी हुआ।

मीरा का संघर्ष गृह त्याग के बाद भी समाप्त नहीं हुआ। अब उन्हें उस समाज का भी सामना करना था, जिनकी दृष्टि में नारी मात्र माया थी, और इस नाते पाप का कुंड भी। मीरा ने यहाँ भी प्रतिवाद किया और ऐसी स्थितियों पर कुशलता से विजय प्राप्त की। यह प्रख्यात है कि वृंदावन में जब वे चैतन्य महाप्रभु के शिष्य जीव गोस्वामी से मिलने गयीं तो स्त्री कहकर उनकी उपेक्षा की गयी और जीव गोस्वामी ने मिलने से इंकार कर दिया। इससे भक्ति क्षेत्र में व्याप्त पुरुष-वर्चस्ववादी सोच का पता चलता है। लेकिन जब मीरा ने भी उत्तर में यह कह भेजा कि वृंदावन में कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष है? तो मीरा के ज्ञान और सामर्थ्य का भान जीव गोस्वामी को हुआ और वे निरुत्तर होकर स्वयं मीरा से भेट करने आए। यह प्रसंग तत्कालीन संत समाज और मीरा के व्यक्तित्व का परिचायक है। मीरा का सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व ऐसा है कि वे समाज की लिंग-भेदपरक व्यवस्था के खांचे को अमान्य करते हुए परिवार, समाज और संस्कृति के सभी संस्थानों में एक व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान दर्ज कराती हैं। उनकी दृष्टि में सांसारिक पुरुष तो नश्वर हैं तो फिर अहंकार कैसा? अनश्वर तो सिर्फ श्रीकृष्ण हैं।¹⁷ पुरुषवादी व्यवस्था को यह सीधी चुनौती थी।

मीरा की भक्ति और प्रेम का मूलाधार उनका कृष्ण में अटूट विश्वास है। इसी विश्वास के दम पर तो वे सारे संसार की रीति-नीति को चुनौती दे डालती हैं। उनका प्रेम अपूर्व है। जिस प्रकार अपनी प्रेमनुभूति को उन्होंने व्यक्त किया है, उससे कई बार उसका लोक संदर्भ सहज जान पड़ता है। लेकिन इस प्रेम में जो उदात्तता है, निष्कलुषता और निश्छलता है, साधना है, उससे उसके लोक के इतर होने का संदर्भ भी देता है। मीरा के पदों में जोगी का जिक्र कई बार

आता है जिसे लेकर विभिन्न विचारकों में पर्याप्त मत-वैभिन्न है। इस योगी को कई विचारकों ने लौकिक संदर्भ दिया है तो कईयों ने इसे अलौकिक तौर पर श्रीकृष्ण से जोड़ा है। इसे नाथपंथ के प्रभाव के रूप में भी देखा गया है। विश्वनाथ त्रिपाठी जोगी में प्रियतम कृष्ण और मृत पति के रूप के घुलमिल जाने की चर्चा करते हैं, जबकि भगवनदास तिवारी का मानना है कि ये पद भ्रष्ट हैं और संभवतः बाद में जोड़ दिए गए हैं।¹⁸ किसी भी अर्थ में इन पदों को समझा जाय, उससे मीरा के काव्य में मौजूद चेतना, निर्भीकता, साहस और विद्रोह के विचारों पर कोई फर्क नहीं पड़ता और यह काव्य स्त्री स्वर को मजबूती देता है।

मीरा अपने संघर्ष को व्यापक स्त्री समुदाय से जोड़ देती हैं। मीरा का दर्द अपूर्व है, उसे समझना सबसे बूते की बात नहीं। खासकर दर्द देने वाला सामंती पितृसत्तात्मक समाज तो बिलकुल भी नहीं। इसे तो वही समझ सकता है जिसके हृदय में अग्नि की ज्वाला मौजूद हो, घायल की हालत उस दर्द को महसूसने वाला ही समझ सकता है

हेरी म्हाँ तो दरद दिवाणी म्हारा दरद णा जाण्यां कोय।

घायल री गति घायल जाण्यां हिबड़ों अगण संजोय,

जौहर कीमत जौहर जाण्यां क्या जाण्यां जिण खोय

दरद री मारयां दर-दर डोल्यां भेद मिल्यां णा कोय

मीरा री प्रभु पीर मिटांगा जब वैद सांवरो होय।

मीरा के काव्य में प्रेम की दीवानगी और उत्कट अभिलाषा है

जो कई बार घनानंद की याद भी दिलाती है।

अंतर हौ किधौं अंत रहौ, टग फारि फिरौं कि अभागनी भीरौं,

आगि जरौं आकि पानि परौं अब कैसी करौं हिय का विधि

धीरौं,

जो घन आनन्द ऐसी रुची तो कहा बस है इन प्राननी पीरौं,

पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरनी में धसौं कि अकासहि चीरौं ॥

मीरा के कई पदों में अपने अबला होने का अहसास भी है। उनके अनेक पद उनकी असहाय वृत्ति का उल्लेख करते हैं। सारे विद्रोह और साहस के बावजूद मध्यकालीन सामंती बंधनों में बंधी नारी की विवशता मीरा के काव्य में प्रत्यक्ष है। अबला होने का अहसास इतना प्रबल है कि वे बार-बार प्रभु कृष्ण से आकर उनकी रक्षा करने का आह्वान करती हैं। कृष्ण से उनका बहुविध संबंध है, प्रेमी का, पति का, प्रभु का, उद्धारक का- प्रत्येक रूप में वे उनके संरक्षक और इष्ट हैं। इस इष्ट के प्रति मीरा का समर्पण भाव देखने

लायक है। यह मीरा के तीखे तेवर और संघर्ष के बिलकुल विपरीत असर देता है। वे उसके समक्ष चाकरी को भी प्रस्तुत हैं, यह संदर्भ मीरा के उद्धत स्वभाव से अलग रूप में मीरा को स्थापित करता है। स्त्री की मुक्ति का आह्वान करने वाली, राजसत्ता को तेवर दिखने वाली मीरा पति, प्रेमी और इष्ट रूपी पुरुष के समक्ष पूर्ण समर्पण को तत्पर हैं। इसमें वे अपना सौभाग्य मानती हैं। मध्यकालीन समाज और धर्मशास्त्र स्त्री को पति परमेश्वर मानने और उसकी अधीनता में ही सारे सुख की कामना करने का ही तो संदेश देते हैं। कृष्ण के विभिन्न लोकरक्षक रूपों की स्मृति और स्वयं को असहाय स्त्रियों से जोड़ना इसी मनोवृत्ति का परिचायक है।

प्रेम स्वभावतः विद्रोही होता है और इसलिए वह सत्ता का प्रतिपक्ष रचता है। मीरा भी अपने प्रेम के माध्यम से यही करती हैं। उनकी आकांक्षा आध्यात्मिक से अधिक सामाजिक है, जो सामाजिक व्यवस्था के भीतर स्त्री स्वतंत्रता की आकांक्षा को मजबूत आवाज देती है। मीरा की भक्ति, उनकी कविता और उनका जीवन सभी परस्पर घुलमिल से गए हैं। उनका विद्रोह, उनकी कविता, उनके जीवन और भक्ति का प्रमुख आयाम है। यह उनका चुनाव नहीं अपितु उनकी विवशता भी है। दरअसल "मीरा का विद्रोह एक विकल्पहीन व्यवस्था में अपनी स्वतंत्रता के लिए विकल्प की खोज का संघर्ष है। विकल्प की खोज में संकल्प की शक्ति उन्हें भक्ति से मिलती है। मीरा की कविता में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न से बेचैन स्त्री- स्वर की मुखर अभिव्यक्ति है। उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा जितनी आध्यात्मिक है उतनी ही सामाजिक भी है।"¹⁹ मीरा का जीवन संघर्ष, उनके प्रेम का विद्रोही स्वभाव और उनकी कविता में स्त्री स्वर की सामाजिक सजगता, भक्ति आंदोलन की एक बड़ी उपलब्धि है, जिसकी ओर हिंदी आलोचना में कम ही ध्यान दिया गया है।²⁰

समग्रतः कहा जा सकता है कि मीरा के काव्य में जहां एक ओर कृष्ण-भक्ति, प्रेम और विरह-वेदना के तत्व मौजूद हैं वहीं दूसरी ओर उसी तन्मयता के साथ समकालीन राजसत्ता व पितृसत्ता के विरुद्ध खड़े होने का दम भी है। इस तरह मीरा मध्यकालीन स्त्रियों की दशा, दुख और दर्द को वाणी देती हैं। वे मध्यकालीन समाज की उन तमाम वर्जनाओं, रूढ़ियों एवं कुरीतियों को पूरी ठसक के साथ तोड़ने को तत्पर हैं, जिन्होंने स्त्रियों के जीवन को अमानवीय

बना दिया था। मीरा के काव्य में स्त्रियों की आशा-आकांक्षा और व्यथा का स्वर तो है ही, लेकिन साथ ही इन स्थितियों के विरुद्ध उठ खड़े होने और उनके विद्रोह का स्वर भी स्पष्टतः ध्वनित हुआ है। इसलिए मीरा के काव्य को पढ़ते हुए एक स्त्री का दर्प, विचार और संघर्ष बार बार सामने आता है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता। मीरा के काव्य में जो प्रतिरोध की सशक्त चेतना है, वह स्त्री मुक्ति के किसी भी अभियान के लिए, समरस समाज के निर्माण के लिए बहुमूल्य है। वस्तुतः अपने अंतर्विरोधों के बावजूद मीरा की कविता प्रतिबंधों के साये में जीवन जीने वाली मनुष्यता के अधिकार से वंचित स्त्री जाति की मुक्ति का घोषणापत्र है,²¹ जिसमें स्वतन्त्रता, समानता, सम्मान और सपनों की उड़ान की गहरी छटपटाहट मौजूद है।

संदर्भ

1. पृष्ठ — 21, (प्रो. नित्यानंद तिवारी) मध्यकालः एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक- धनंजय कुमार दुबे, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
2. पृष्ठ- 241, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य- शिव कुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2012
3. पृष्ठ — 20, (प्रो. नित्यानंद तिवारी) मध्यकालः एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक- धनंजय कुमार दुबे, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017
4. पृष्ठ -162, विचार का अनंत- पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, संस्करण 2000
5. पृष्ठ- 21, स्त्री मुक्तिः संघर्ष और इतिहास- रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012
6. पृष्ठ- 242, भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य- शिव कुमार मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2012
7. पृष्ठ- 31, भक्ति आंदोलन और स्त्री विमर्श- मेधा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
8. पृष्ठ-97, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
9. पृष्ठ-109, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
10. पृष्ठ- 37, भक्ति आंदोलन और स्त्री विमर्श- मेधा, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2014
11. पृष्ठ-112, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
12. पृष्ठ-113, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
13. पृष्ठ-112, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
14. पृष्ठ-110, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
15. पृष्ठ-21, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
16. पृष्ठ-21, मीरा का काव्य- विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989
17. पृष्ठ- 183, स्त्री अस्मिता और कविता का भक्ति युग — शशिकला त्रिपाठी, अनुज्ञा बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021
18. पृष्ठ- 132, कथा- (मीराबाई पर विशेष)- संपादक- अंबुज, अंक-16, मई-2012
19. पृष्ठ-59, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1993
20. पृष्ठ-43, भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य - मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 2003
21. पृष्ठ- 225, मीरा एक पुनर्मूल्यांकन — संपादक- पल्लव, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, परिवर्द्धित संस्करण 2015